

भगवानदास मोरवाल के कथा-साहित्य में स्त्री जीवन और सामाजिक संघर्ष: एक यथार्थपरक और विद्रोही अध्ययन

राम भरतभाई हिराभाई

प्रस्तावना

समकालीन हिंदी साहित्य में भगवानदास मोरवाल का नाम उन रचनाकारों की श्रेणी में आता है, जिन्होंने साहित्य को केवल मनोरंजन का माध्यम न मानकर उसे सामाजिक बदलाव, चेतना के विस्तार और शोषित-पीड़ित वर्गों की आवाज़ बनाने का बीड़ा उठाया है। राजस्थान के मरुस्थलीय परिवेश, वहां की कठोर भौगोलिक स्थितियां, जटिल जाति-प्रथा और सामंती मानसिकता मोरवाल की कथाओं की आत्मा हैं। उनके साहित्य में स्त्री जीवन और सामाजिक संघर्ष का चित्रण किसी कोमल भावुकता या रोमांटिक यथार्थ के तहत नहीं, बल्कि एक नंगे, कच्चे और क्रूर सच के रूप में सामने आता है।

मोरवाल के कथा-साहित्य में स्त्री केवल एक पीड़ित पात्र नहीं है, बल्कि वह उस सामाजिक, आर्थिक और जातिगत शोषण की केंद्र-बिंदु है, जिसके इर्द-गिर्द सत्ता की पूरी राजनीति घूमती है। एक दलित-बहुजन चेतना से लैस लेखक के रूप में मोरवाल यह अच्छी तरह समझते हैं कि भारत में स्त्री का शोषण केवल 'लिंग' के आधार पर नहीं होता, बल्कि यह शोषण 'जाति' और 'वर्ग' के साथ मिलकर एक जटिल जाल बुनता है। एक सवर्ण स्त्री और एक दलित/बहुजन स्त्री के संघर्ष की प्रकृति भिन्न है। मोरवाल की कहानियां इसी भिन्नता, इसी छल-कपट और इसी विद्रोह की दस्तावेज़ हैं।

इस आलेख में भगवानदास मोरवाल के कथा-साहित्य में स्त्री जीवन, उसकी पीड़ा, उसकी मजबूरियां और सबसे बढ़कर उसके सामाजिक संघर्ष एवं विद्रोह का विस्तृत और विश्लेषणात्मक अध्ययन किया जाएगा।

1. राजस्थानी परिवेश और स्त्री की भूमिका

भगवानदास मोरवाल की कहानियों का भू-भाग मुख्य रूप से राजस्थान है। राजस्थान का सामाजिक ढांचा अत्यंत रूढ़िवादी, सामंती और पितृसत्तात्मक रहा है। यहां का भौगोलिक परिवेश जितना कठोर है, वहां का सामाजिक परिवेश उतना ही निर्मम। मोरवाल अपनी कहानियों में इस परिवेश को स्त्री के जीवन के साथ जोड़कर देखते हैं।

रेगिस्तान की तपती रेत, पानी की बूंद-बूंद को तरसती ज़मीन और लू के थपेड़े मोरवाल की कहानियों में केवल पृष्ठभूमि नहीं हैं, बल्कि वे स्त्री के संघर्ष के प्रतीक हैं। राजस्थानी ग्रामीण समाज में स्त्री का जीवन पानी की तलाश, खेतों की मजदूरी और परिवार की जिम्मेदारियों के बीच पिघल जाता है। मोरवाल अपनी कहानियों में स्त्री के सिर पर घड़ा या मटका उठाए किलोमीटर दूर से पानी लाने के दृश्यों का बार-बार उल्लेख करते हैं। यह केवल शारीरिक श्रम नहीं है, बल्कि यह उस सामाजिक अवहेलना का प्रतीक है जहां राज्य की मूलभूत सुविधाओं से वंचित एक तबके को उसकी स्त्रियों के शारीरिक शोषण के माध्यम से जिंदा रखा जाता है।

मोरवाल दिखाते हैं कि कैसे यह स्त्रियां दिन भर कड़ी धूप में खेतों में काम करती हैं, पशुओं को चारा डालती हैं, घर का चूल्हा संभालती हैं और फिर भी समाज की नज़रों में उनका कोई अस्तित्व नहीं होता। उनका शरीर केवल एक 'मशीन' है जिसे सत्ता और परिवार दोनों अपने-अपने तरीके से निचोड़ते हैं। मोरवाल का यथार्थवाद यहीं पर चरम पर पहुंचता है जब वे स्त्री के इस अदृश्य श्रम को पाठक के सामने नंगे सच के रूप में रखते हैं।

2. जाति, पितृसत्ता और स्त्री शरीर का शोषण

भगवानदास मोरवाल के साहित्य का सबसे विस्फोटक और मार्मिक पक्ष यह है कि वे दलित-बहुजन स्त्री के शरीर पर होने वाले सवर्ण अत्याचार को बिना किसी संकोच के पाठक के सामने रखते हैं। भारतीय समाज में, विशेषकर ग्रामीण और सामंती क्षेत्रों में,

सवर्णों के लिए दलित स्त्री का शरीर एक 'सार्वजनिक संपत्ति' या 'भोग की वस्तु' रहा है। यह यौन शोषण केवल कामुकता का परिणाम नहीं है, बल्कि यह सत्ता प्रदर्शन का एक हथियार है। दलित पुरुष को नीचा दिखाने, उसकी अस्मिता को कुचलने और सामाजिक दबदबा कायम रखने के लिए सवर्ण वर्ग दलित स्त्रियों का शोषण करता है। मोरवाल की कहानियों में यह क्रूरता चरम पर होती है। उनकी कहानियों की स्त्रियां जब खेतों में मजदूरी करने जाती हैं, तो उन्हें सवर्ण जमींदारों, ठाकुरों या प्रभावशाली जातियों के पुरुषों की हवस का शिकार बनना पड़ता है। मोरवाल इस शोषण को रोमांटिक नहीं करते, बल्कि इसके पीछे छपी राजनीति को उजागर करते हैं।

एक महत्वपूर्ण तथ्य जो मोरवाल अपनी कहानियों में दिखाते हैं, वह है 'पंचायत' का कथित न्याय। जब दलित स्त्री के साथ अत्याचार होता है, तो गांव की खाप या पंचायतें उसे ही दोषी ठहराती हैं। स्त्री को यह सिखाया जाता है कि वह सवर्ण पुरुषों की नज़रों में क्यों गिरी? मोरवाल की कहानियों में स्त्री का यह आक्रोश कि "मेरे कपड़े फाड़े गए, मेरा शरीर नोचा गया, और पंचायत मुझसे पूछ रही है कि मैं वहां क्यों गई थी?"—यह प्रश्न पूरे पितृसत्तात्मक और जातिवादी कानून व्यवस्था के गले में फंसी हुई हड्डी की तरह है। मोरवाल दिखाते हैं कि कैसे कानून, पुलिस और पंचायतें—all मिलकर इस शोषण को संस्थागत रूप देते हैं।

3. आर्थिक उत्पीड़न और श्रम

मोरवाल के कथा-साहित्य में स्त्री की लड़ाई केवल पुरुष के खिलाफ नहीं है, बल्कि वह पूंजीवादी और सामंती आर्थिक ढांचे के खिलाफ भी है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था में स्त्री पुरुष के साथ-कंधे से कंधा मिलाकर काम करती है, लेकिन मजदूरी के समय उसे वह सम्मान या वेतन नहीं मिलता। मोरवाल की कहानियों में फसल कटाई के दृश्य बार-बार आते हैं। खेतों में काम करने वाली दलित और पिछड़ी जातियों की स्त्रियां दिन भर झुकाकर काम करती हैं, उनकी कमर टूट जाती है, लेकिन जमींदार उन्हें पुरुष मजदूरों की तुलना में आधी मजदूरी देता है। मोरवाल इस आर्थिक असमानता को स्त्री के संघर्ष का एक बड़ा हिस्सा मानते हैं।

उनकी कहानियों की स्त्रियां जब अपनी मेहनत की सही कींग की मांग करती हैं, तो उन पर लाठियां बरसाई जाती हैं। यहाँ मोरवाल मार्क्सवादी और अंबेडकरवादी दृष्टिकोण को मिलाते हैं। वे दिखाते हैं कि वर्ग-संघर्ष और जाति-संघर्ष के केंद्र में स्त्री ही है। स्त्री की आर्थिक निर्भरता ही उसे परिवार और समाज दोनों में गुलाम बनाए रखती है। जब स्त्री आर्थिक रूप से शोषित होती है, तो वह अपने घर के भीतर भी आक्रोश नहीं निकाल सकती। मोरवाल की कहानियों में स्त्री का यह दोहरा शोषण—खेत में जमींदार द्वारा और घर में पति/ससुराल द्वारा—एक मार्मिक त्रासदी का निर्माण करता है।

4. परिवार और विवाह

समाज का पहला पाठशाला परिवार है, और मोरवाल दिखाते हैं कि यह पाठशाला स्त्री के लिए कितना क्रूर कारागार है। राजस्थान जैसे क्षेत्रों में पर्दा प्रथा, घूंघट और स्त्री की गतिविधियों पर कड़ी नज़र रखना सामाजिक मर्यादा मानी जाती है। मोरवाल की कहानियों में विवाह एक ऐसा संस्थान है जो स्त्री को केवल प्रजनन यंत्र और घरेलू दासी के रूप में स्थापित करता है। दहेज की प्रथा, बाल विवाह, और स्त्री को संपत्ति में हिस्सेदारी से वंचित रखना—ये सभी मुद्दे मोरवाल की कहानियों में जीवंत होते हैं। लेकिन मोरवाल का सबसे बड़ा कारनामा यह है कि वे दिखाते हैं कि कैसे स्वयं शोषित पुरुष अपने घर में स्त्री पर सत्ता चलाता है। यह 'पितृसत्ता का हस्तांतरण' है।

मोरवाल की कहानियों में पति जब बाहर की दुनिया में अपमानित होता है, तो वह घर आकर अपनी पत्नी पर गुस्सा निकालता है, उसे मारता है। स्त्री के लिए उसका अपना घर, उसका अपना पति, एक दूसरा जेलखाना होता है। मोरवाल स्त्री के इस आंतरिक संघर्ष को बहुत बारीकी से पकड़ते हैं। स्त्री के मन का वह अंधेरा, वह घुटन, जब वह अपने मायके को याद करती है, लेकिन मायके के दरवाज़े भी उसके लिए बंद होते हैं। मोरवाल की कहानियों की स्त्रियां अक्सर रात के सन्नाटे में रोती हैं, लेकिन उनका यह रोना केवल आत्मकृपा (Self-pity) नहीं होता, बल्कि यह उस व्यवस्था के खिलाफ एक मौन प्रतिरोध होता है जो उन्हें इंसान नहीं समझती।

5. प्रतिकार और विद्रोह

भगवानदास मोरवाल के साहित्य को केवल 'पीड़ा के साहित्य' के रूप में देखना उनकी रचनाओं के साथ अन्याय होगा। मोरवाल केवल घाव नहीं दिखाते, वे उस घाव पर नमक छिड़कने वाली तलवार भी उठाते हैं। उनके कथा-साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनकी स्त्रियां अंततः विद्रोह करती हैं। वे मौन नहीं रहतीं। मोरवाल की कहानियों में स्त्री का विद्रोह अचानक नहीं होता। यह एक लंबी पीड़ा, सहनशीलता और अन्याय के बाद फूटने वाला ज्वालामुखी होता है। जब स्त्री देखती है कि उसकी बेटियों के साथ वही सलूक हो रहा है जो उसके साथ हुआ था, जब वह देखती है कि उसका शोषण पीढ़ी-दर-पीढ़ी चल रहा है, तो उसके भीतर का 'मनु' मर जाता है और एक 'अंबेडकर' या 'फूले' का बीज अंकुरित होता है।

मोरवाल की कहानियों में स्त्रियों का सामूहिक विद्रोह एक शक्तिशाली मोटिफ है। जब गांव की सारी दलित-बहुजन स्त्रियां एकजुट होकर सवर्णों के अत्याचार के खिलाफ खड़ी होती हैं, तो सत्ता के पसीने छूट जाते हैं। मोरवाल दिखाते हैं कि स्त्रियों का यह सामूहिकत्व (Collectivism) कैसे पितृसत्ता और जातिवाद दोनों को हिला देता है। एक कहानी में जब एक ठाकुर दलित स्त्री को छेड़ता है और पंचायत स्त्री को ही कटघरे में खड़ा करती है, तो वह स्त्री चुपचाप अपमान सहने के बजाय पंचायत में ही आग लगा देती है या सवर्ण पुरुष के सामने अपना घूँघट फाड़कर उसकी हवस को कोसती है। यह 'घूँघट का फटना' केवल एक भौतिक क्रिया नहीं है, बल्कि यह पितृसत्ता द्वारा थोपी गई मर्यादा के प्रतीक को तोड़ने का एक राजनीतिक कृत्य है। मोरवाल की स्त्रियां अब 'इज्जत' के नाम पर अपने शरीर और आत्मा का सौदा नहीं करतीं। वे समझ चुकी हैं कि उनकी इज्जत उनके अपने हाथ में है, किसी सवर्ण पुरुष की दया पर नहीं।

6. शिक्षा और जागृति

मोरवाल के कथा-साहित्य में स्त्री के संघर्ष का एक अन्य महत्वपूर्ण आयाम 'शिक्षा' और 'राजनीतिक जागरूकता' है। वे दिखाते हैं कि कैसे जब दलित-बहुजन परिवारों की बेटियां स्कूल जाने लगती हैं, तो सवर्ण समाज और स्वयं उनके परिवार के पुरुष उन्हें रोकने का प्रयास करते हैं। क्योंकि सत्ता को पता है कि शिक्षित स्त्री गुलाम नहीं बन सकती। मोरवाल की कहानियों में ऐसी युवा लड़कियां आती हैं जो पढ़कर अपने अधिकारों के बारे में जानती हैं। वे संविधान की बात करती हैं, वे अंडेडकर के विचारों से प्रभावित होती हैं। ये लड़कियां न केवल अपने लिए लड़ती हैं, बल्कि गांव की अन्य स्त्रियों को भी जागरूक करती हैं। मोरवाल दिखाते हैं कि कैसे एक शिक्षित दलित स्त्री गांव की पंचायत में खड़ी होकर कानूनी भाषा में सवर्णों को उनकी औकात याद दिलाती है। यह बौद्धिक संघर्ष मोरवाल की कहानियों में भविष्य की उम्मीद के रूप में उभरता है।

7. धर्म और अंधविश्वास

राजस्थान के ग्रामीण परिवेश में धर्म और अंधविश्वास का स्त्री जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। मोरवाल अपनी कहानियों में दिखाते हैं कि कैसे धर्म के नाम पर स्त्रियों का शोषण किया जाता है। देवी-देवताओं के नाम पर बलि, तांत्रिक क्रियाएं, या किसी बीमारी को 'प्रेत-बाधा' मानकर स्त्री को प्रताड़ित करना—ये सभी क्रियाएं मोरवाल की कहानियों में यथार्थ के रूप में मौजूद हैं।

जब घर में कोई बीमार पड़ता है, तो इलाज कराने के बजाय स्त्री को ही दोषी माना जाता है कि उसकी नज़र खराब है या उसने किसी देवता को नाराज़ कर दिया है। मोरवाल इस अंधविश्वास के खिलाफ अपनी कहानियों के पात्रों के माध्यम से आवाज़ उठाते हैं। वे दिखाते हैं कि यह धर्म नहीं, बल्कि सवर्णों द्वारा गढ़ा गया एक ऐसा हथियार है जिससे दलित-बहुजन स्त्रियों को मानसिक रूप से गुलाम बनाकर रखा जाता है। मोरवाल की कहानियों की स्त्रियां जब इन अंधविश्वासों को तर्क के कसौटी पर कसती हैं और उन्हें नकारती हैं, तो वे धार्मिक गुलामी से भी मुक्त होने का संकेत देती हैं।

8. स्त्री पात्रों का मनोवैज्ञानिक चित्रण

मोरवाल की कहानियों की स्त्रियां केवल समाजशास्त्रीय अवधारणाएं नहीं हैं, बल्कि वे जीवंत, रक्त-मांस के इंसान हैं, जिनके अपने मनोवैज्ञानिक उथल-पुथल हैं। मोरवाल का लेखन स्त्री के मनोविज्ञान को बहुत गहराई से समझता है। उनकी कहानियों में स्त्री के भीतर एक द्वंद्व चलता रहता है—एक ओर पारंपरिक मूल्य, परिवार की लाज, और बच्चों का भविष्य होता है, तो दूसरी ओर आत्मसम्मान की आग। मोरवाल दिखाते हैं कि कैसे एक मां अपनी बेटी को उसी दर्द से बचाना चाहती है जो उसने सहा है, लेकिन समाज की व्यवस्था उसे ऐसा नहीं करने देती।

मोरवाल की भाषा शैली में स्त्री के दर्द को व्यक्त करने के लिए राजस्थानी लोकगीतों, ढोला-मारू की कहानियों, और मरुस्थल की प्रकृति का सहारा लिया जाता है। स्त्री का दर्द कभी सूखे की तरह बेहाल होता है, तो कभी सावन की बिजली की तरह विस्फोटक। मोरवाल का मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद पाठक को स्त्री के उस अंधेरे कमरे में ले जाता है, जहां वह अकेली रोती है, लेकिन सुबह होते ही फिर से उसी तपती धूप में निकल पड़ती है। यह निरंतरता ही उनकी स्त्रियों की महानता है।

9. सवर्ण स्त्री और दलित स्त्री का अंतर्विरोध

भगवानदास मोरवाल एक संवेदनशील लेखक हैं, इसलिए वे स्त्री को एक ही इकाई के रूप में नहीं देखते। वे जानते हैं कि एक सवर्ण स्त्री और एक दलित स्त्री का संघर्ष अलग-अलग है। उनकी कहानियों में सवर्ण स्त्रियां भी पितृसत्ता की शिकार होती हैं, लेकिन उनका शोषण 'चारदीवारी' के भीतर होता है। उन्हें पर्दे में रहना पड़ता है, उनकी शिक्षा पर रोक होती है, और उन्हें केवल वंश वृद्धि का माध्यम माना जाता है। लेकिन मोरवाल स्पष्ट करते हैं कि सवर्ण स्त्री की यह गुलामी 'सुरक्षित' होती है, जबकि दलित स्त्री की गुलामी 'असुरक्षित' होती है। सवर्ण स्त्री को बाहर निकलकर खेतों में काम नहीं करना पड़ता, उसे सवर्ण पुरुषों की हवस का शिकार नहीं होना पड़ता। मोरवाल की कहानियों में सवर्ण स्त्रियां अक्सर दलित स्त्रियों पर ही अपना आक्रोश निकालती हैं। ससुराल में सास और ननद द्वारा दलित बहु पर किया जाने वाला अत्याचार मोरवाल की कहानियों में पितृसत्ता के उस जटिल जाल

भगवानदास मोरवाल के कथा-साहित्य में स्त्री जीवन और सामाजिक संघर्ष: एक यथार्थपरक और विद्रोही अध्ययन
को दिखाता है जहां सवर्ण स्त्रियां खुद पितृसत्ता की रक्षक बन जाती हैं। यह 'अंतर्विरोध' मोरवाल के साहित्य को बहुत गहरा और बहुआयामी बनाता है।

10. प्रतीकों और बिंबों का प्रयोग

मोरवाल अपनी कहानियों में स्त्री के जीवन और संघर्ष को दशनि के लिए अत्यंत प्रभावशाली प्रतीकों और बिंबों का प्रयोग करते हैं।

रेगिस्तान और रेत: स्त्री का सहनशील, लेकिन उपेक्षित जीवन।

आग: स्त्री का आक्रोश और विद्रोह। जब स्त्री चुप रहती है तो वह राख होती है, लेकिन जब बोलती है तो आग बन जाती है।

खेत और फसल: स्त्री का श्रम, जिसे सवर्ण जमींदार काट ले जाता है।

घूंघट: पितृसत्ता की जंजीरें, जिन्हें स्त्री अंततः तोड़ना चाहती है।

मोरवाल की भाषा में मारुथल की खशबू और विद्रोह की गंध दोनों हैं। वे स्थानीय बोलियों, मुहावरों और लोक-संस्कृति का प्रयोग करके स्त्री के जीवन को इतना सजीव बना देते हैं कि पाठक उस तपती धूप और उस स्त्री के पसीने की बूंदों को महसूस करने लगता है।

11. समकालीन प्रासंगिकता

आज के समय में, जब देश में दलित-बहुजन आंदोलन और स्त्रीवाद अपने चरम पर हैं, भगवानदास मोरवाल का कथा-साहित्य अत्यंत प्रासंगिक हो जाता है। उनका साहित्य हमें याद दिलाता है कि भारत का असली चेहरा शहरों की चमक-दमक में नहीं, बल्कि गांवों की उन गलियों में बसा है जहां आज भी दलित स्त्रियों को सवर्णों के कुएं से पानी नहीं भरने दिया जाता, जहां आज भी खेतों में काम करने वाली स्त्रियों को उनकी मेहनत की आधी कीमत दी जाती है, और जहां आज भी अस्मिता की लड़ाई लड़ने वाली स्त्रियों के कपड़े फाड़े जाते हैं।

मोरवाल का साहित्य केवल दर्द का रोना नहीं है, बल्कि यह एक 'लड़ाकू साहित्य' है। यह साहित्य पाठक को झकझोरता है, उसे अपने चारों ओर हो रहे अन्याय के प्रति संवेदनशील बनाता है और सबसे महत्वपूर्ण यह कि यह शोषित वर्ग, विशेषकर स्त्रियों को यह संदेश देता है कि उनका विद्रोह नैतिक रूप से सही है।

निष्कर्षतः

भगवानदास मोरवाल के कथा-साहित्य में स्त्री जीवन और सामाजिक संघर्ष का चित्रण हिंदी साहित्य में एक मील का पत्थर है। उन्होंने स्त्री को केवल 'करुणा का पात्र' नहीं बनाया, बल्कि उसे 'विद्रोह की मशाल' बनाया है। उनकी कहानियों की स्त्रियां रेगिस्तान की उस 'कीकर' (कांटेदार झाड़ी) की तरह हैं, जो तपती रेत में भी जीवित रहती है, अपने अंदर पानी (जीवन और आशा) संचित करती है, और जब मौका मिलता है तो सत्ता के पैरों में चुभकर उसे लहलुहान कर देती है।

मोरवाल का साहित्य इस बात का प्रमाण है कि जब तक जाति और पितृसत्ता का नाश नहीं होता, स्त्री का संघर्ष अधूरा है, और जब तक स्त्री मुक्त नहीं होती, समाज का कोई भी वर्ग सही अर्थों में मुक्त नहीं हो सकता। उनका हर शब्द, हर वाक्य, और हर कहानी उस अनकही चीख का दस्तावेज़ है, जो दशकों से राजस्थान के मरुस्थल में गूंज रही है, और अब उनके साहित्य के माध्यम से पूरे देश के साहित्यिक और सामाजिक गलियारों में प्रतिध्वनित हो रही है।